

अखिल भारतीय गांधर्व महाविद्यालय मंडल प्रकाशन

संगीत कला विहार

₹ ३०/-

सप्टेंबर २०१३

भुजा चार एक दन्त चन्द्रमा ललाट राजे । ब्रह्मा विष्णु महेश ताल दें ध्रुवपद गावें ।।
अति विचित्र गणनाथ आज मृदंग बजावे ।गणनाम गणपति गणेश लम्बोदर सोहे ।।

स्वतन्त्र पाठ्यक्रम साहित्य विभाग

पं. रविशंकर

– पं. विजयशंकर मिश्र

भारत की सांस्कृतिक राजधानी वाराणसी में 7 अप्रैल, 1920 को जन्में पं. रविशंकर अपने सात भाई-बहनों में सबसे छोटे थे। उनके बड़े भाई उदयशंकर उनसे 18 वर्ष बड़े थे। रविशंकर ने जब होश संभाला तो अपने बड़े भाई पं. उदयशंकर – जो भारतीय बैले के जनक थे – को एक स्टार कलाकार के रूप में देखा-पाया। रविशंकर ने बाद में स्वीकारा भी – ''ही वॉज माय फर्स्ट हीरो।''

पं. उदयशंकर ने विभिन्न नृत्य शैलियों के संयोजन से एक नवीन नृत्य शैली का सर्जन किया था – जिसे बाद में 'उदयशंकर नृत्य शैली' के नाम से जाना गया। वे अपने नृत्य दल के साथ प्राय: विदेश के दौरों पर रहते थे। रविशंकर उनसे अत्यधिक प्रभावित थे, अत: वे भी उनके दल में शामिल हो गये। नृत्य की शिक्षा आरम्भ हो गई और मात्र दस वर्ष की उम्र में उन्होंने अपना पहला नृत्य कार्यक्रम विदेशी धरती पर ही दिया था। रविशंकर ने एक बार कहा भी था – ''जीवन में पहली बार जिस व्यक्ति से मैं प्रभावित हुआ वे मेरे दादा थे। उन्होंने मेरे लिए बहुत छोटी उम्र में ही पश्चिमी दुनिया के द्वार खोल दिए थे। उनका व्यक्तित्व अत्यन्त आकर्षक था। पैरिस समेत दुनिया के कई बड़े शहरों एवं कई महान लोगों जैसे, रोमां रोला, फ्रिट्ज क्रीसलर और आईंस्टीन आदि के साक्षात्कार का सौभाग्य मुझे उन्हीं के कारण मिला। और मैं उन्हीं के संगीत दल में संगीत निर्देशन कर रहे उ. अलाउद्दीन खां के सम्पर्क में आया।''

चूंकि पं. रविशंकर का बचपन विदेश में व्यतीत हुआ था इसलिए पश्चिम का रंग उनके ऊपर पूरी तरह चढ़ा हुआ था। पं. रविशंकर का जीवन उतार-चढ़ाव से भरा हुआ था। बचपन विदेश में बिताने के बाद जब वे मैहर में बाबा अलाउद्दीन खां से सीखने पहुंचे तो उन्हें कई तरह की कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। विदेशी रंग में रंगे रविशंकर को मैहर में एक छोटे और साधारण से कमरे में रहना पड़ता था। स्वयं रविशंकर ने ही एक बार शिक्षण काल की समस्याओं को बयान करते हुए कहा था – ''मैं बचपन से ही सुख-सुविधाओं के बीच पला-बढ़ा था। अत: जब बाबा से सीखने मैहर पहुंचा तो वहां का माहौल मुझे बड़ा अजीब लगा। रस्सी की खाट पर सोना। रात के सन्नाटे में तेज हवा से खड़कती खिड़कियां और दरवाजे। तरह-तरह के जंगली कीड़े-मकोड़े और जानवरों का भय मुझे हमेशा भयभीत किए रहता था। लेकिन, मैंने तय कर लिया था कि मुझे बाबा से ही सीखना है, और उनसे सीखने के लिए सब कुछ सहन करना है।''

लेकिन, समस्याएं सिर्फ इतनी ही नहीं, और भी थीं। उस्ताद अलाउद्दीन खां स्वयं सितार नहीं, सरोद बजाते थे। अत: रविशंकर को सिखाने के लिए विभिन्न स्वर-समुदायों का या तो वे सरोद पर वादन करते थे, या गाकर बताते थे। इसलिए उन स्वरांशों को सितार पर हू-ब-हू कैसे प्रस्तुत किया जाए – यह जिम्मेदारी स्वयं रविशंकर की होती थी। और इसी जिम्मेदारी का निर्वहन करते हुए पं. रविशंकर ने अपने सितार और सितार वादन की शैली स्वयं विकसित की थी। नयेपन के प्रति उनका शुरू से ही आकर्षण था। इसलिए, वे अपने सितार और उसके वादन को नए रूप में ढालने के लिए शुरू से ही प्रयत्नशील थे, और अन्तत: उसे उन्होंने कर भी दिखाया। जिसका प्रथम अनुभव लोगों को 1939

में इलाहाबाद में तब हुआ था, जब रविशंकर ने पहला-पहला कार्यक्रम दिया था।

पं. रविशंकर जितने महान् सितार वादक थे, उतने ही श्रेष्ठ सर्जक भी। सर्जनात्मकता का बीज पं. रविशंकर में बचपन से ही जड़ें जमा चुका था। इस सर्जनात्मकता का परिचय उन्होंने 1945 में इंडियन पीपल्स थिएटर एसोसिएशन (इप्टा) में शामिल होकर विभिन्न संगीत संयोजनों के माध्यम से दिया। इप्टा में रहते हुए ही उन्होंने 'धरती का लाल' (ख्वाजा अहमद अब्बास) और 'नीच नगर' (चेतन आनंद) फिल्मों का संगीत तैयार किया था। 1955 में अल्लामा इकबाल के गीत 'सारे जहां से अच्छा हिन्दोस्तां हमारा, हम बुलबुले हैं इसके यह गुलिस्तां हमारा' का संगीत तैयार करके जन-मन में लोकप्रिय बना दिया। पं. जवाहर लाल नेहरु कृत 'भारत एक खोज' के नाट्य रूपान्तर के लिए भी उन्होंने संगीत तैयार किया था।

इन्हीं दिनों रविशंकर को एक अदद नौकरी की जरूरत महसूस हुई। आर्थिक परेशानियां बढ़ती जा रही थीं। छिट-पुट कार्यक्रमों के सहारे गुजारा करना कठिन होता जा रहा था। उन दिनों मुंबई में पं. रविशंकर के साथ संघर्ष कर रहे पं. किशन महाराज एक दिन आईना लेकर आए तो उसे देखकर खुश होते हुए रविशंकर बोले थे - ''किशन भाई ! यह बहुत अच्छी चीज ले आए। आईने के बगैर दाढ़ी बनाते समय अक्सर कट जाता है।'' तो, ऐसे दिन थे वे। तभी दिल्ली के आकाशवाणी केन्द्र ने वाद्य वृन्द का विभाग खोला और उसके संचालन तथा प्रमुख पद के लिए पं. रविशंकर को आमंत्रित किया। आकाशवाणी में कार्य करते हुए भी उन्होंने 'जीवन-जमुना' और 'गांव की गोरी' जैसी संगीत संरचनाएं तैयार कीं। 'इम्मॉर्टल इंडिया', 'चंडालिका', 'कैनेडियन फैंटसी', 'द चैरिटी टेल', 'एलिस इन वंडरलैंड' एवं 'फ्लूट एंड वो' आदि में भी इनके संगीत को खूब सराहना मिली। बाजारवाद और व्यावसायिक तकाजों से समझौता किए बगैर उन्होंने बाद में भी कई फिल्मों का संगीत निर्देशन किया। इनमें 'पथेर पांचाली', 'अपराजिता' और 'अपूर संसार' जैसी यादगार बांगला फिल्मों के साथ-साथ 'काबुलीवाला', 'गोदान', 'चार्ल्स', 'मीरा' और रिचर्ड एटनबरोकृत 'गांधी' जैसी सर्वकालिक फिल्में शामिल हैं। यह कहना उचित होगा कि इन क्लासिक फिल्मों का संगीत भी क्लासिक है।

पं. रविशंकर के मानस में सर्जनात्मकता का बीज बचपन में ही जड़ें जमा चुका था, वह जब अंकुरित... पुष्पित और पल्लवित हुआ तो तिलक श्याम, नट भैरव, वैरागी भैरव, परमेश्वरी, कामेश्वरी, रंगेश्वरी, गंगेश्वरी, जन सम्मोहिनी, मोहन कौंस, रसिया और इन जैसे कई अन्य राग अस्तित्व में आ गए। इतना ही नहीं, उस्ताद अमान अली खां और उस्ताद अब्दुल करीम खां आदि की परम्परा को आगे बढ़ाते हुए कई दक्षिण भारतीय रागों यथा मलय मारुतम्, हेमावती, चारुकेशी, वाचस्पति, हंसध्वनि और कीरवानी आदि जैसे कई रागों को उत्तर भारतीय संगीत शैली में प्रस्तुत करके लोकप्रिय बनाने की दिशा में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया।

सन् 1952 में पश्चिम के महान् वॉयलिन वादक सर लॉर्ड यहूदी मेन्युइन से रविशंकर की मुलाकात हुई। रविशंकर यहूदी मेन्युइन से काफी प्रभावित हुए। यहूदी मेन्युइन ने भी युवा रविशंकर की सर्जनात्मक और कलात्मक प्रतिभा को तुरन्त ही पहचान लिया। अत: दूरियां घटते देर न लगी। दोनों तेजी से एक दूसरे की ओर आकृष्ट हुए। 1954 में रविशंकर ने एक सांस्कृतिक प्रतिनिधि मंडल के सदस्य के तौर पर तत्कालीन् सोवियत संघ की यात्रा की थी। सन् 1955 में यहुदी मेन्युइन ने उन्हें न्यूयॉर्क में फोर्ड फाउण्डेशन के कार्यक्रम में आमंत्रित किया था। लेकिन, आकाशवाणी की नौकरी से छुट्टी न मिलने के कारण वे न्यूयॉर्क नहीं जा पाए। अपने स्थान पर उन्होंने उस्ताद अली अकबर खां को वहां भेजा। यहूदी मेन्युइन ने अली अकबर को विश्व के महानतम् संगीतज्ञ के रूप में स्वीकारा। लेकिन, वे रविशंकर के साथ काम करने के लिए उत्साहित थे। अत: 1956 में उन्होंने पुन: रविशंकर को विदेश यात्रा का न्यौता भेजा। उ. अली अकबर को मिली सफलता से रविशंकर भी उत्साहित थे। अत: उन्होंने आकाशवाणी की नौकरी से त्याग-पत्र देकर विदेश यात्रा की राह पकड़ी। इंग्लैंड, जर्मनी और अमेरिका की यात्रा करके उन्होंने भारतीय संगीत का सिक्का जमा दिया।

इसी काल खंड में पं. रविशंकर ने पैरिस में हुए अंतर्राष्ट्रीय संगीत समारोह में भाग लिया। यहां रविशंकर की प्रतिभा से

पाश्चात्य देश के संगीतज्ञ चकाचौंध हो गए। पूरब और पश्चिम के बीच की दूरियां घटने और सिमटने लगीं। उन्हीं दिनों एक ऐसा संगीत तैयार होने लगा जो दोनों देशों, सभ्यताओं और संस्कृतियों के बीच सेतु का काम करने लगा। आज साधारण-सी भी जुगलबंदी को जिस 'फ्यूजन' का नाम देकर कई युवा संगीतकार 'मलाई' खा रहे हैं, उस फ्यूजन का असली रूप उस काल में ही निर्मित, सर्जित हुआ था। लॉर्ड यहूदी मेन्युइन, जॉन कॉल्ट्रेन, डेविड आइस्ट्रैक, जॉर्ज हैरिसन, ज्याँ पियरे रामपाल, हॉजेन यामाटो, आंद्रे प्रेवे, जुबीन मेहता, सुसुमि मियास्टा और फिलीप ग्लास आदि के साथ उनकी शानदार और सफल जुगलबंदियों ने शास्त्रीय संगीत के इस दिग्गज कलाकार को पश्चिमी देशों में कई पॉप और रॉक स्टार की तरह लोकप्रिय बना दिया था। उन दिनों उनका सड़क पर निकलना मुश्किल हो गया था। उन्हें देखते ही उनके चारों ओर उनके प्रशंसकों की भीड़ जमा हो जाती थी। यह रविशंकर की लोकप्रियता का प्रमाण है कि पाश्चात्य देशों में सितार और तानपुरा का अंतर न समझने वाले सामान्य लोग और हवाई अड्डे पर तैनात सुरक्षा अधिकारी सितार या तानपुरा देखते ही कह उठते हैं – 'रविशंकर'। यह बहुत बड़ी बात है किसी वाद्‌य और उसके वादक के लिए।

सन् 1968, 1972 और 2002 में विश्व स्तर पर सर्वाधिक लोकप्रिय संगीत को दिया जाने वाला ग्रैमी सम्मान जीत चुके पं. रविशंकर और विवाद के बीच गहरा रिश्ता था। रविशंकर और विवाद एक दूसरे से कुछ उसी तरह आजीवन जुड़े रहे जैसे तार और सितार। कई बार ऐसा हुआ है कि रविशंकर के प्रयोग विवादों से घिर गए... कई बार ऐसा भी हुआ है कि उनके प्रयोगों को पूरी तरह जाने बिना ही लोग उनकी आलोचना करने लगे, और कई बार तो स्वयं रविशंकर ने विवादों को आमंत्रित किया। लेकिन, रविशंकर ने शायद इन विवादों की कभी परवाह नहीं की। और शायद इसीलिए उन्होंने कभी अपना रास्ता नहीं बदला।

पाश्चात्य संगीतज्ञों के साथ रविशंकर की प्रस्तुतियों को लेकर भारत के अनेक कट्टरपंथी संगीतज्ञों ने उनकी कटु आलोचनाएं कीं। लेकिन, ये प्रयोग इतने आसान नहीं थे। भिन्न-भिन्न देशों के संगीत के साथ भारतीय संगीत का तालमेल वही संगीतकार कर सकता था, जिसने दोनों देशों के संगीत को निकट से देखा हो... गहराई से समझा हो-और- उन दोनों संगीत शैलियों की आत्मा को जाना हो। इसलिए इस कार्य को रविशंकर जैसा कुशाग्र बुद्धि संगीतकार ही कर सकता था। दोनों संगीत शैलियों को निकट से जानने के कारण ही पं. रविशंकर उस क्षितिज को ढूंढ़ पाए थे – जहां पूरब और पश्चिम का संगीत आकर गले मिलता था। 'ईस्ट मीट्स वेस्ट' का आधार वही संधि स्थल तो था।

कई लोगों ने पं. रविशंकर की रागदारी पर भी प्रश्न चिह्न लगाया, जोकि सही नहीं था। पं. रविशंकर जब सितार लेकर मंच पर बैठते थे तो वे विशुद्ध रूप से बीनकार-सेनिया घराने की वादन शैली प्रस्तुत करते थे, जो बाद में मैहर घराना कहलाया। ध्रुवपद अंग से आलाप, एक-एक स्वर को साकार और मुखरित करते हुए, उसके मार्मिक स्थलों को उभारते हुए राग का सुनिबद्ध, क्रमबद्ध विकास, जमजमा, गमक, कृंतन और मींड का स्वप्निल प्रयोग तथा ठुमरी और विभिन्न प्रदेशों के लोकधुनों का प्रयोग उनकी विशेषता थी। अपने वाद्‌य और वादन को गांभीर्य प्रदान करने के लिए उन्होंने अपने वाद्‌य की बनावट में परिवर्तन किया.... उसमें तुम्बा लगाया... और अतिमंद्र का अतिरिक्त तार भी लगाया। एक बार रविशंकर की रागदारी, उसकी शास्त्रीयता और शुद्धता पर जब किसी संगीत समीक्षक ने पं. निखिल बैनर्जी का मत जानना चाहा था तो पं. निखिल बैनर्जी ने बिना किसी लाग-लपेट के, दो टूक लहजे में कहा था – ''रोबू दा' जो बजाते हैं वही राग है।'' इस छोटे से जवाब के अर्थ को समझने की कोशिश कीजिए। निखिल बैनर्जी के कथन का अर्थ यह है कि किसी पुस्तक में वर्णित राग स्वरूप के आधार पर रविशंकर की वादन कला का आकलन नहीं किया जा सकता। बल्कि रविशंकर किसी राग को जिस रूप में बजा रहे हैं – उसे प्रमाणिक माना जाना चाहिए। अंग्रेजों ने भी तो माना है – ''ग्रामर फौलोज शेक्सपियर!'' रविशंकर ने भी कहा था, ''जो भी व्यक्ति कोई नया या क्रान्तिकारी कदम उठाता है, उसे जमाने का विरोध सहना ही पड़ता है। तानसेन से लेकर अलाउद्दीन खां तक ने इस विरोध को सहा है। मैं भी सह रहा हूं।''

दरअसल रविशंकर ने रागों का वर्ण संकर रूप कभी नहीं प्रस्तुत किया। उन्होंने अपनी प्रयोगधर्मिता का परिचय सिर्फ वाद्य वृन्दों में, संगीत संरचनाओं में और पाश्चात्त्य संगीत के साथ अपनी युगल प्रस्तुतियों में दिया। धमार, पंचम सवारी, चारताल की सवारी जैसे तालों में सितार वादन और सितार की संगति के लिए पखावज जैसे धीर-गंभीर साज के प्रथम उपयोग का श्रेय भी पं. रविशंकर को दिया जाना चाहिए।

सौंदर्य के प्रति पं. रविशंकर के मन में शुरू से ही आसक्ति का भाव था। वे स्वयं भी अत्यन्त आकर्षक व्यक्तित्व के स्वामी थे। और, वही आकर्षण वे हर वस्तु में, हर कहीं चाहते थे। वही आकर्षण उन्हें अपनी ओर खींचता था। पं. रविशंकर प्रथम भारतीय संगीतकार थे, जिन्होंने न केवल अपने संगीत, बल्कि अपने व्यक्तित्व, रूप-सज्जा, मंच-सज्जा आदि पर ध्यान देना शुरू किया। न केवल उनके पहले तक, बल्कि उनके अनेक समकालीन संगीतकारों का भी पूरा ध्यान अपने संगीत पर होता था। उनका मानना था कि श्रोता जिस संगीत को सुनने आए हैं, उस संगीत का स्तर श्रेष्ठ होना चाहिए। शेष बातों से क्या फर्क पडता है? लेकिन, पं. रविशंकर ने इस श्राव्य-कला को दृश्य कला बनाया। उन्होंने एक नया तर्क पेश किया। अगर श्रोता - दर्शक भी है- वह संगीतकार को देख भी रहा है - तो जरूरी है कि न केवल संगीत- बल्कि संगीतकार भी आकर्षक हो - साथ ही वह मंच भी आकर्षक हो- जिस पर वह संगीत प्रस्तुत किया जा रहा है। उनके इस मत से बाद के संगीतकारों ने भी सहमति व्यक्त करते हुए उनका अनुसरण किया।

पं. रविशंकर ने सांगीतिक अनुशासन पर भी जोर दिया। वे समय के बहुत पाबंद थे। अगर किसी समारोह में पहला कार्यक्रम उनका होता था तो वह ठीक समय पर शुरू होता था। दर्शकों की या मुख्य अतिथि की प्रतीक्षा में समय गंवाना उन्हें बिलकुल भी पसंद नहीं था। एक बार एक संगीतकार उनसे समय लेकर जब उनसे मिलने पहुंचे तो पं. रविशंकर घड़ी देखकर छूटते ही बोले थे - "आइए, मैं पिछले तीन मिनट से आपकी प्रतीक्षा कर रहा हूं।" प्रख्यात गायक पं. रामाश्रय झा के निधन पर दिल्ली दूरदर्शन की ओर से जब मैं पं. रविशंकर का उद्गार जानने दिल्ली स्थित उनके निवास पर जा रहा था तो कुछ तो ट्रैफिक के कारण और कुछ चाणक्यपुरी में रास्ता भटक जाने के कारण मुझे विलंब हो गया था। इसलिए हम आंधी-तूफान की तरह गाड़ी लेकर उनके निवास पर पहुंचे थे। उन्होंने तीन बजे का समय दिया था, अत: मैंने ड्राईवर से कह दिया था कि अगर तीन बजकर एक मिनट भी हो जाएगा तो मैं नहीं जाऊंगा। अंतत: हम ठीक तीन बजे उनके घर में थे और तीन बजकर एक मिनट पर उनके सामने।

कार्यक्रम के बीच में लोगों का सभागार में आना-जाना, बातें करना, चाय आदि पीना उन्हें कतई गंवारा नहीं था। एक बार इंदिरा गांधी की पुण्यतिथि पर वे अपना कार्यक्रम प्रस्तुत कर रहे थे। लोग आ रहे थे.... इंदिरा जी को श्रद्धांजलि अर्पित कर रहे थे और बैठ रहे थे। लेकिन, कार्यक्रम के दौरान इस तरह का व्यवधान उन्हें पसंद नहीं आया.... अनमने भाव से वे थोड़ी देर तक तो बजाते रहे। लेकिन, जल्द ही उन्होंने अपना बजाना बंद कर दिया। इतना प्यार करते थे वे अपने संगीत और सितार को। विदेश यात्रा के दौरान जहाज में उनके बगल की कुर्सी 'सुर शंकर' के नाम पर आरक्षित होती थी, और उस सीट पर उनका सितार होता था - ठीक उनके साथ - ठीक उनके बगल में।

पं. रविशंकर ने अपना पूरा जीवन अपनी मर्जी के मुताबिक, अपनी शर्तों पर जिया। जिन्दगी जीने का उनका अपना एक अन्दाज था। उनका पहला विवाह उनकी गुरु पुत्री अन्नपूर्णा देवी के साथ हुआ। लेकिन, यह वैवाहिक संबंध बहुत दिनों तक नहीं चल पाया, और शुभेन्द्र शंकर नामक एक पुत्र के जन्म के बाद दोनों अलग हो गए। सुंदर और आकर्षक चीजें उन्हें सहज आकर्षित करती थीं। इसलिए उनके प्रणय संबंध कई लोगों के साथ रहे। उनकी भाभी - पं. उदय शंकर की पत्नी अमला शंकर की छोटी बहन कमला के साथ भी उनके प्रणय संबंध रहे। बाद में वे सूई जोन्स के आकर्षण पाश में बंध गए - जिनसे नोरा जोन्स नामक उन्हें एक पुत्री हुई। नोरा जोन्स पाश्चात्त्य संगीत जगत् में अपना अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान रखती हैं। 1989 में पं. रविशंकर ने अपनी चौथी शादी सुकन्या से की। उस समय उन दोनों की पुत्री अनुष्का आठ वर्ष की थी। एक अनौपचारिक बातचीत में उन्होंने बताया था

कि किसी लड़की की सुंदर आंखें और लम्बे घने केश सर्वप्रथम उन्हें अपनी ओर आकर्षित करते हैं। पं. रविशंकर के प्रेम संबंधों पर काफी कुछ लिखा जा चुका है। स्वयं रविशंकर ने भी अपने प्रणय संबंधों को छुपाया नहीं, बल्कि अपनी आत्मकथा में उनका खुलकर वर्णन किया है।

लेकिन, पं. रविशंकर के प्रेम संबंधों की चटखारें लेकर चर्चा करने वाले लोग भूल ही गए कि, पं. रविशंकर की जितनी आसक्ति सौंदर्य और प्रेम में थी, उतनी ही – बल्कि उससे अधिक आध्यात्मिकता में। ॐ में उनकी गहरी आस्था थी। लोदी कालोनी स्थित उनकी कोठी के बाहर उनकी नाम पट्टिका नहीं लगी थी। वहां लिखा था ॐ । वे अपने हर नए कार्य का शुभारम्भ ॐ से करते थे। प्रख्यात कवि, लेखक श्री कैलाश वाजपेयी के साथ एक बातचीत में पं. रविशंकर ने उन्हें बताया था कि –''ॐ नाद ब्रह्म का सर्वोच्च उद्‌गार है। ॐ नादों का नाद है – जहां न तो अ ठहरता है, न उ, बस होंठ गोलाकार होकर बंद होते हैं और काकु से ध्वनि भर निकलती है – ॐ की।

पं. रविशंकर ने बचपन में ही तैलंग स्वामी, लाहिड़ी मोशाय और हरिहर बाबा जैसे कई संतों के दर्शन किए थे, जिससे इनके जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ा था। रामकृष्ण परमहंस और विवेकानन्द की पुस्तकों ने भी उनके जीवन पर गहरा असर छोड़ा था। बाद में वे टाट वाले बाबा के सम्पर्क में आए। घटना उन दिनों की है जब रविशंकर की आर्थिक अवस्था अच्छी नहीं थी। वे एक कार्यक्रम में जाने की तैयारी कर रहे थे – जहां से अच्छे पैसे मिलने की संभावना थी। तभी टाट लपेटे एक व्यक्ति ने इनके कमरे में प्रवेश करके इनसे कहा कि वे सितार सुनने आए हैं। रविशंकर परेशान ! लेकिन, अंततः उन्होंने कार्यक्रम में जाने का विचार त्यागकर टाटवाले बाबा को सितार सुनाने का निर्णय लिया। पं. रविशंकर मानते थे कि उनकी सफलता में टाटवाले बाबा के आशीर्वाद का महत्त्वपूर्ण योगदान है। लेकिन रविशंकर धार्मिक अनुष्ठानों में बहुत अधिक रुचि नहीं लेते थे। वे हंसकर कहते थे – ''मैं, आध्यात्मिक हूं – धार्मिक नहीं।''

जीवन के कई उतार–चढ़ाव और धूप–छांव देख चुके पं. रविशंकर एक बड़े संगीतकार थे, और अपने इस बड़ेपन का एहसास था उन्हें। वे देश के सबसे अधिक पारिश्रमिक लेने वाले संगीतकार थे। उन्होंने अपने व्यवहार और शर्तों से समाज में संगीतकारों को एक सम्मानजनक स्थान दिलवाया। उन्हें पता था कि अपनी शर्तें किससे, कैसे मनवानी हैं? और, वे अपनी शर्तों पर ही कार्य करते थे। इसलिए बाद के दिनों में एक ऐसा भी समय आया जब रविशंकर आम लोगों से दूर हो गए थे... आम लोगों के लिए वे आकाश कुसुम हो गए थे।

उनके बढ़े हुए पारिश्रमिक ने उन्हें उस ऊंचाई पर पहुंचा दिया था कि साधारण संगीत संस्थाओं के लिए उनका कार्यक्रम आयोजित करना और साधारण लोगों का उनके कार्यक्रमों में पहुंच पाना असंभव की हद तक कठिन हो गया था। केवल बड़ी व्यावसायिक कम्पनियां ही उनके कार्यक्रमों को प्रायोजित कर पाने में सक्षम रह पाई थीं। हालांकि पं. रविशंकर को सिगारेट, शराब आदि बनाने वाली कम्पनियों द्वारा प्रायोजित कार्यक्रमों में भाग लेना स्वीकार होता था। किन्तु मंच पर, बैनर में इनका विज्ञापन उन्हें नहीं मंजूर था। राजस्थान के एक ऐसे ही कार्यक्रम में – जो एक जूता कम्पनी द्वारा प्रायोजित था, पं. रविशंकर जब मंच पर पहुंचे तो पीछे टंगे बैनर पर जूते का विज्ञापन देखकर मंच के पीछे आ गए। अंततः उनकी बात मानी गई और उस बैनर को एक कपड़े से ढंका गया। तब वे वादन के लिए राजी हुए।

लेकिन, अत्यधिक पारिश्रमिक लेने वाले संगीतकार पं. रविशंकर ने दक्षिण अफ्रीका और बांगला देश की आर्थिक सहायता के लिए भी कार्यक्रम आयोजित किया था। नशे की गिरफ्त में फंसते युवा संगीतकारों की समस्याओं को उजागर करते हुए उन्हें भविष्य के प्रति सचेत करने हेतु उन्होंने बर्मिंघम टूरिंग ऑपेरा कम्पनी की सहायता से 'घनश्याम' नामक नृत्य नाटिका तैयार की थी। इसमें कत्थक, कथकली, भरतनाट्यम् और उदयशंकर नृत्य शैली के माध्यम से उनकी समस्याओं को रेखांकित किया गया था। इसका संगीत और नृत्य दिग्दर्शन पं. रविशंकर ने किया था।

पं. रविशंकर को दुनिया भर में जितने मान–सम्मान मिले थे, उन सबको याद रख पाना स्वयं उनके लिए भी असंभव था। फिर भी, बर्लिन का प्रसिद्ध 'सिल्वर बेअर' सम्मान पाने

वाले वे प्रथम भारतीय थे। वे कला और साहित्य की अमेरिका अकादमी के मानद सदस्य भी थे। यूनाइटेड नेशन्स इंटरनेशनल रोस्ट्रम ऑफ कम्पोजर्स की सदस्यता, कैलिफोर्निया इंस्टिट्यूट ऑफ आर्ट में भारतीय संगीत के विभागाध्यक्ष, अंतर्राष्ट्रीय संगीत परिषद की सदस्यता जैसे पद उन्हें सादर और साग्रह सौंपे गए थे। कैलिफोर्निया युनिवर्सिटी द्वारा उन्हें डिग्री ऑफ डॉक्टर से विभूषित किया गया था। 'गांधी' फिल्म के संगीत के लिए उन्हें अकॅडमी अवॉर्ड मिला था, तो तीन बार ग्रैमी सम्मान भी। रोमन मैगसेसे सम्मान भी उन्हें मिला था।

पं. रविशंकर की यह बहुत बड़ी विशेषता थी कि उनकी आत्मा की तरह उनका संगीत भी सदैव जवान और ऊर्जावान रहा.... न तो उनका मन थका और बूढ़ा हुआ, और न तो उनका संगीत। अपने युवा शिष्यों : विश्व मोहन भट्ट, रोनू मजूमदार, तरुण भट्टाचार्य, शुभेन्द्र राव, पार्थ सारथी, गौरव मजूमदार और पुत्री अनुष्का आदि के साथ अगर वे कदम से कदम मिलाकर चलते रहे, तो उनका संगीत भी नए जमाने के इन संगीतकारों को चुनौति देता रहा। जहां भारतीय संगीत में सदियों से इस बात का रोना रोया जा रहा है कि यहां गुरुगण ईमानदारी और उदारता से शिष्यों को नहीं सिखाते हैं। पं. रविशंकर ने पं. विजय राघव राव, पं. उमा शंकर मिश्र, कार्तिक कुमार, पं. शशि मोहन भट्ट, उ. शमीम अहमद और पं. वरुण पाल जैसे वरिष्ठ शिष्य संगीत जगत को दिए हैं। पं. विश्व मोहन भट्ट ने अपने गुरु के चरण चिह्नों पर चलते हुए ग्रैमी सम्मान जीता है तो पं. रोनू मजूमदार और पं. तरुण भट्टाचार्य उसके लिये नामांकित हुए हैं। पं. रविशंकर का एक अलबम 2013 के ग्रैमी सम्मान के लिए नामांकित है, जहां उनका मुकाबला उनकी पुत्री अनुष्का के साथ है। यह बहुत बड़ी बात है कि गुरु के जीवन काल में ही शिष्य उनकी बराबरी पर उनके मुकाबले में आ खड़े हों। इस सफलता का जितना श्रेय शिष्य को जाता है, उससे कहीं अधिक गुरु को। सच है! उन्होंने जिस भी लोहे को छुआ, सोना बना दिया।

गुरुदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर से अत्यधिक प्रभावित रहे पं. रविशंकर को विश्वभारती शान्ति निकेतन द्वारा वहां के सर्वोच्च सम्मान 'देशिकोत्तम्' से सम्मानित किया गया था। मध्य प्रदेश शासन द्वारा उन्हें कालिदास सम्मान से सम्मानित किया गया था, तो केंद्रीय संगीत नाटक अकादमी द्वारा अकादमी सम्मान के साथ-साथ उसकी रत्न सदस्यता भी प्रदान की गई थी। 'पद्म भूषण' और 'पद्म विभूषण' के अलंकरणों से अलंकृत पं. रविशंकर राज्य सभा के सदस्य भी थे। दुनिया भर के तकरीबन अठारह विश्वविद्यालयों द्वारा डी.लिट्. की उपाधि से सम्मानित पं. रविशंकर को भारत के सर्वोच्च नागरिक अलंकरण 'भारत रत्न' से भी सम्मानित किया गया था।

12 दिसम्बर, 2012 की जिस सुबह हृदयगति रुकने से भारतीय संगीत के विश्वदूत पं. रविशंकर का निधन हुआ वह दिन संगीत जगत् में किसी काले दिन की तरह याद किया जाएगा। क्योंकि इस दिन एक सितार वादक, संगीत संरचनाकार, संगीत निर्देशक, संगीत चिंतक और विचारक, संगीत गुरु, संगीत सर्जक, संगीत लेखक और संगीत आयोजक का निधन एक साथ हुआ था। और, एक साथ इतनी सारी मौतों को भला कौन संवेदनशील और भावुक हृदय बर्दाश्त कर सकता है? इसलिए यह मौत संगीत जगत् के लिए एक गहरा आघात है। ग्रैमी सम्मान समिति द्वारा पं. रविशंकर को मरणोपरान्त 'लाइफ टाइम अचीवमेंट' सम्मान से सम्मानित करने की घोषणा की गई। पचपनवें ग्रैमी पुरस्कार समारोह में जो 10 फरवरी, 2013 को लॉस एंजिल्स में संपन्न हुआ। पं. रविशंकर के उत्तराधिकारियों द्वारा यह सम्मान स्वीकारा गया। पं. रविशंकर इस सम्मान को पाने वाले प्रथम भारतीय संगीतज्ञ हुए। जीवन भर नए कीर्तिमान स्थापित करने वाले पं. रविशंकर मरने के बाद भी एक नया कीर्तिमान स्थापित कर गए। बधाई।

– पंडित विजयशंकर मिश्र
'शंकरा' 705 डी/ 21सी
वॉर्ड नं. 3, महरौली
नई दिल्ली 110 030
दूरभाष : (011) 2664 1963
मोबाइल : 09810517945
e-mail : anhad.sam@gmail.com